वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं.356
ISBN-978-93-82071-34-1

जैन आगम में
नव पदार्थ

(नव पदार्थों के क्रम में अन्तर)

–लेखिका –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी
पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539, पौष वदी 11	मूल्य
1100 प्रतियाँ	8 जनवरी 2013	16/-रु.

भगवान चन्द्रप्रभ एवं पार्श्वनाथ का जन्म-तपकल्याणक

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

पीठाधीश की कलम से.....

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी में साहित्य सृजन की अविरल धारा को प्रवाहित करके जैनधर्म की अद्भुत प्रभावना की है तथा जैन साहित्य जगत पर भी अनंत उपकार किये हैं। विशेषरूप से आपकी लेखनी से प्रसूत पद्य साहित्य अर्थात् पूजा-विधान से जन-जन को अमोघ शस्त्र के रूप में भक्ति का मार्ग प्राप्त हुआ है।

पूज्य माताजी द्वारा लिखित साहित्य को सतत प्रकाशित करने के लिए पूज्य माताजी की ही पुण्य प्रेरणा से सन् 1972 में स्थापित दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के अन्तर्गत वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला की भी स्थापना की गई, तब से लगातार इस ग्रंथमाला द्वारा साहित्य प्रकाशन का कार्य किया जा रहा है। जहाँ इस ग्रंथमाला ने लाखों श्रावकों एवं श्रद्धालु भक्तों को ज्ञान का लाभ प्रदान किया है, वहीं विशिष्ट एवं गुणवत्तापूर्ण प्रकाशन के माध्यम से इस ग्रंथमाला को भी समाज के मध्य एक विशिष्ट ख्याति प्राप्त हुई है।

इस ग्रंथमाला से जहाँ पूज्य माताजी द्वारा टीकाकृत षट्खण्डागम जैसे महान सिद्धान्त ग्रंथों तथा नियमसार, समयसार, गोम्मटसार, अष्टसहस्री, कातंत्र व्याकरण आदि जैसे मूल आगम ग्रंथों का प्रकाशन होता है, वहीं मुख्यतः पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी व प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित विभिन्न बड़े-छोटे पूजा-मण्डल विधान आदि का प्रकाशन भी समाज के लिए विशेष मांग हेतु बना रहता है। आज हम इस ग्रंथमाला को अत्यन्त सौभाग्यशाली मानते हैं, जिसके माध्यम से प्रकाशित हो रहे सत् साहित्य की वर्ष भर पूरे 365 दिन भारत के कहीं न कहीं, किसी न किसी मंदिर में मण्डल विधान या साहित्य वितरण आदि के लिए मांग आती रहती है और जैनधर्म व भक्तिमार्ग की प्रभावना में यह ग्रंथमाला नित्य ही तत्पर रहती है।

विशेषरूप से इस ग्रंथमाला द्वारा समाज को लागत मूल्य से भी कम राशि पर साहित्य उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है, जिससे कि सुविधापूर्वक जन-जन तक साहित्य पहुँच सके। आगे भी इसी प्रकार यह ग्रंथमाला अपना दायित्व निभाती रहे, यही भावना है। वर्तमान में प्रकाशित हो रही इस पुस्तक के माध्यम से आप सभी श्रावकजन विशेष धर्मलाभ को प्राप्त करें तथा जैनधर्म का यह ज्ञान आपके सम्यक्त्व को दृढ़ करने में सदा सहकारी बनकर मोक्षमार्ग को प्रशस्त करे, सभी भक्तों को मेरी यही शुभकामनाएं एवं मंगल आशीर्वाद है।

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

सम्पादकीय

-जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

प्रिय पाठकों! दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के अन्तर्गत संचालित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से यह "जैन आगम में नौ पदार्थ" नामक पुस्तक प्रकाशित हो रही है। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अपनी लेखनी से तीन सौ ग्रंथों का लेखन किया है। उनमें छोटे-बड़े सब तरह के ग्रंथ एवं पुस्तकें हैं। छोटे बालक से लेकर उच्चकोटि के विद्वानों तक की रुचि को ध्यान में रखकर पूज्य माताजी ने बाल विकास से लेकर षट्खण्डागम की संस्कृत टीका तक का लेखन कर साहित्यजगत में कीर्तिमान स्थापित किया है।

हमने अपनी ग्रंथमाला के द्वारा तीन सौ से अधिक शास्त्रों का प्रकाशन लाखों की संख्या में किया है। उसी शृँखला में तत्त्व और पदार्थों का सूक्ष्म विवेचन करने वाली यह पुस्तिका अपने आप में अगल तरह की है। इसके अध्ययन से पाठकों एवं विद्वानों को नई दिशा मिलेगी और पूर्वाचार्यों की वाणी को समझने का अवसर प्राप्त होगा। वर्तमान में आगम के इन तलस्पर्शी विषयों का ज्ञान कराने वाली मात्र एक ज्ञानमती माताजी हैं, जिनके शरीर के रोम-रोम में प्राचीन आर्ष परम्परा की सुगंध भरी हुई है। वे हम सब लोगों को भी हमेशा यही प्रेरणा देती हैं कि लोक प्रभावना में आकर कभी भी मूल सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं करना।

शरदपूर्णिमा महोत्सव-२०१२ के समय जब पूज्य गणिनीप्रमुख माताजी ने अपने त्यागमयी जीवन के ६० वर्ष पूर्ण किए, उस अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के अधिवेशन में संगठन की राष्ट्रीय महामंत्री श्रीमती मनोरमा जैन-दिल्ली ने भावना व्यक्त की कि जैसे पूज्य माताजी ने पिछले दो वर्षों को प्रथमाचार्य शांतिसागर वर्ष और प्रथम पट्टाचार्य वीरसागर वर्ष मनाने की घोषणा की थी, उसी प्रकार अब यह अगला वर्ष हमें भी अपनी गुरुओं की भक्ति में "चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष" के रूप में मनाने की अनुमति दी जावे।

उनकी इस भावनानुसार पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने वर्ष २०१३ को चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा करते हुए बड़ी संख्या में युवा और बाल पीढ़ी को संस्कारित करने की प्रेरणा प्रदान की।

इसी चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित हो रहा ग्रंथमाला का यह नूतन पुष्प सभी को अपनी सुगंध से सुरभित करे, यही भावना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

"जिनागम में नव पदार्थ" नाम की यह महत्त्वपूर्ण पुस्तिका जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने आगम के मक्खन की तरह से तैयार करके हमें प्रदान की है। इसमें निहित तत्त्वों/पदार्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर हमें तत्त्वों के मूल तथ्यों का ज्ञान होता है कि श्री इन्द्र-भूति गौतम गणधर स्वामी ने इनका जो क्रम बताया है उसका अनुपालन धवला समयसार, मूलाचार, गोम्मटसार के रचनाकारों तक बराबर हुआ है। तथा तत्त्वार्थ सूत्र में इन तत्त्वों का क्रम कुछ अन्य प्रकार से है। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी सदैव कहती हैं कि हमें धवला टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य का अनुसरण करते हुए जहाँ भी आगम में दो पक्ष मिलें, वहाँ दोनों को प्रमाण मानना चाहिए। संक्षेप में यहाँ यह जानना है कि वर्तमान के उपलब्ध साहित्य में श्री गौतम गणधर स्वामी रचित प्रतिक्रमण के सूत्र हैं जिसमें उन्होंने नौ पदार्थों का क्रम इस प्रकार दिया है–

"से अभिमद जीवाजीव उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्खमहि कुसले"

जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध-मोक्ष।

इसी का अनुसरण षट्खण्डागम ग्रन्थ की धवला टीका लिखने वाले आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने वर्गणाखण्ड की टीका में करते हुए लिखा है कि–

"जीवाजीव-पुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खेहि णवहि पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण किं पि अत्थि, अणुवलंभादो।" अर्थात् जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नौ पदार्थों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है। इसमें विशेष रूप से यह जानना है कि धवलाकार ने इनको नौ पदार्थ कहा है तथा समयसार की आत्मख्याति टीका में श्री अमृतचन्द्र सूरि ने 'नवतत्त्वानि' कहकर नौ तत्त्व शब्द से चिह्नित किया है तथा श्री जयसेनाचार्य ने तात्पर्यवृत्ति टीका में "नव पदार्थाः" शब्द प्रयोग किया है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड की तत्त्व प्रबोधिनी टीका में भी नव पदार्थ कहा है इन सबके प्रमाण इस पुस्तक में दिए गए हैं। कहीं-कहीं इन्हें तत्त्व भी कहा है सो तत्त्व और पदार्थों में तो कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता है, किन्तु इनके क्रम में वर्तमान में कुछ परिवर्तन हुए हैं इसीलिए पूज्य माताजी को यह पुस्तिका संकलित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उनके सम्यक्त्व की दृढ़ता देखकर कभी-कभी महान् आश्चर्य होता है कि

उन्हें जिनागम में एक शब्द की भी मिलावट, परिवर्तन या परिवर्द्धन असीम चिन्ता उत्पन्न कर देता है। जिसके कारण वे पूरी नींद तक नहीं ले पाती हैं और प्राचीन ग्रन्थों के आलोडन में लग जाती हैं।

मैंने उन्हें बाह्य विषम परिस्थितियों से अथवा किसी प्रकार की अस्वस्थता से कभी चिन्तित होते नहीं देखा है किन्तु आगम विरुद्ध अथवा आर्षमार्गीय गुरू परम्परा के विरुद्ध यदि एक शब्द भी कहीं पढ़ या सुन लेती हैं तो उनका रोम-रोम सिहर उठता है और वे घोर चिन्तामग्न होकर कहने लगती हैं कि हे भगवन् ! आर्ष परम्परा की रक्षा कैसे होगी ? यदि इसी तरह पूर्वाचार्यों की वाणी में मिलावट या परिवर्तन होता रहा तो मूल तथ्यों को आगे की पीढ़ी कैसे पहचानेगी ? ..... आदि।

यहाँ विषय यद्यपि बहुत छोटा सा है कि कुछ वर्षों से प्रतिक्रमण सूत्रों में नव पदार्थों के क्रम को बदलकर मात्र तत्त्वार्थ सूत्र के क्रम से कर दिया गया है किन्तु यह बात बहुत चिन्तनीय इसलिए हो जाती है कि आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने तो गौतम गणधर स्वामी द्वारा प्रतिपादित क्रम के अनुसार ही समयसार में गाथा बनाई और उसी क्रम से ग्रन्थ के अध्यायों का क्रम रखा उन्होंने तो कोई परिवर्तन नहीं किया, जबकि वे तो बहुत बड़े प्राचीन आचार्य की कोटि में है। उनके ग्रन्थ में आज तक कोई विज्ञजन परिवर्तन करने का साहस भी नहीं कर पाए, तो उनसे भी प्राचीन तथा साक्षात् भगवान महावीर की वाणी को द्वादशांग रूप से गूंथने वाले गौतमगणधर स्वामी द्वारा कथित सूत्र में भला परिवर्तन क्यों किया गया ?

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व तक धर्मध्यान दीपक तथा क्रियाकलाप नाम से जो मुनि-आर्यिकाओं की दैनिक पाठ्य पुस्तकें चलती थीं उनमें तो मूल पाठ ही छपता था। उसके पश्चात् लगभग १९८८-८९ से जो श्रमणचर्या, विमलभक्ति संग्रह, दिनचर्या, श्रमणाचार आदि नामकी पुस्तकें छपने लगीं उन सबमें अनेकानेक स्थानों पर मूल पाठ में परिवर्तन किए गए हैं जिनसे वर्तमान की पीढ़ी पूर्ण अपरिचित है। मैंने कई नए साधु-साध्वी एवं ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों को नए और पुराने प्रकाशन दिखाकर इस सम्बन्ध में बात किया तो वे स्वयं आश्चर्य में पड़ गए और कहने लगे कि हमें तो जो किताबों में मिला वहीं पढ़ने लगे, ऐसा परिवर्तन किसने किया है ..... आदि।

इन्हीं सब दृष्टियों से पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी इन दिनों ऐसे आगम के प्राचीन विषयों के प्रमाण संकलन में अपना अधिकाधिक समय लगा रही हैं। आप सभी साधु-साध्वी एवं विद्वत्वर्ग तथा पाठकगण उनके श्रम का मूल्यांकन करें और आर्ष मार्ग की सुरक्षा को अपने जीवन का लक्ष्य बनाने का संकल्प करें, तो वास्तव में यह श्रम सार्थक होगा तथा पंचमकाल के अन्त तक यह जिनेन्द्रवाणी सुरक्षित रह सकेगी।

पूज्यनीय माताजी का यह श्रुतज्ञान एवं दृढ़ सम्यक्त्व इन्हें आगे भवों में शीघ्र श्रुतकेवली-केवली बनावे यहीं भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

पुस्तक की लेखिका, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान — टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि — आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१, (२२ अक्टूबर सन् १९३४)

जाति — अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र** — गोयल, **नाम** — कु. मैना

माता-पिता — श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत — ई. सन् १९५२, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा — चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम — क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा — वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व — अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग ३०० ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि — सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा ८ अप्रैल २०१२ को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा — हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा — भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा — पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा — 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा — जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् १९७४ से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं—

१. सन् १९७२ से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

२. सन् १९७४ से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

३. सन् १९७४ से १९८५ तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

४. सन् १९७४ से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है — कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

५. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग १५००० ग्रंथ संग्रहीत हैं।

६. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

७. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

८. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

९. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

१०. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

११. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

१२. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

जैन आगम में नव पदार्थ

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

दिगम्बर जैन आगम ग्रंथों में सात तत्त्व एवं नव पदार्थों के नाम प्रमुखता से लिये जाते हैं। इन्हीं सात तत्त्व-नव पदार्थों के ऊपर सम्पूर्ण सृष्टि व्यवस्था और मोक्ष व्यवस्था टिकी हुई है।

यूँ तो प्रायः जैन समाज में तत्त्वार्थसूत्र और उससे संबंधित टीका ग्रंथों को पढ़ने की परम्परा भी प्राचीनकाल से देखी जा रही है अतः सभी स्वाध्यायी जनों के मन में "जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षस्तत्त्वम्" सूत्र के अनुसार सात तत्त्वों का क्रम रहता है और इन्हीं में पुण्य-पाप को मिलाने से नौ पदार्थ बन जाते हैं, जिनका वर्णन द्रव्य संग्रह आदि ग्रंथों में पाया जाता है। किन्तु मैं यहाँ आप सभी को एक विशिष्ट तथ्य से परिचित कराना चाहती हूँ।

जो तीर्थंकर महावीर स्वामी के प्रमुख गणधर श्री गौतम स्वामी के मुख से निःसृत वचनानुसार अति प्रामाणिक बात है और उसी प्रमाण को आधार बनाकर आचार्य श्री कुंदकुंदस्वामी आदि महान आचार्यों ने भी अपने ग्रंथों में उन तथ्यों को स्वीकार किया है। वही मूल तथ्य इस पुस्तक में बताया जा रहा है।

इस पुस्तक का नाम है-"जैनागम में नव पदार्थ"। अर्थात् जीव-अजीव आदि नौ पदार्थ होते हैं। इन्हें कहीं-कहीं नौ तत्त्व के नाम से भी आगम ग्रंथों में चिन्हित किया है। इस विषय में आप सभी को इन पदार्थों-तत्त्वों के क्रम से परिचित कराने हेतु यह संकलन मैंने किया है। अर्थात् श्री गौतम गणधर सवामी ने यतियों के पाक्षिक प्रतिक्रमण में जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आश्रव-संवर-निर्जरा-बंध-मोक्ष इस प्रकार का क्रम बताया है। इसी क्रम का अनुसरण श्री वीरसेनाचार्य ने षट्खण्डागम ग्रंथ की धवला टीका में किया है तथा श्री कुंदकुंदाचार्य ने समयसार ग्रंथ की मूल गाथा में यही क्रम बतलाकर इसी क्रमानुसार अधिकारों का विभाजन किया है। गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा में भी यही क्रम देकर इन्हें टीका में नौ पदार्थ कह दिया है।

पुनश्च तत्त्वार्थसूत्र में आचार्य श्री उमास्वामी ने जीव-अजीव-आश्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्ष इन सात तत्त्वों का क्रम थोड़ा परिवर्तित रूप में दिया है। उसी के अनुसार तत्त्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक आदि ग्रंथों के उद्धरण भी यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। ताकि दोनों प्रकार के क्रम से स्वाध्यायीजन परिचित हो सकें।

वर्तमान में कतिपय विज्ञ लोगों ने गौतम गणधर स्वामी के प्रतिक्रमण सूत्रोंमें वर्णित "से अभिमद जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले" इस पाठ को बदलकर "से अभिमद जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्खमहिकुसले" कर दिया है।

अर्थात् प्रतिक्रमण पाठ, समयसार आदि में आश्रव के बाद संवर-निर्जरा को लिया है पुनः निर्जरा के बाद बंध-मोक्ष को लिया है एवं तत्त्वार्थसूत्र में आस्रव के बाद बंध को लेकर पुनः संवर-निर्जरा-मोक्ष को लिया है।

विद्वज्जनों को यहाँ विचार करना है कि समयसार में श्री कुंदकुंदस्वामी ने प्रथम पाठ गौतम स्वामी के अनुसार ही नव पदार्थों में अधिकारों का जो विभाजन किया है, क्या उन अधिकारों को भी बदलने का कोई अति साहस करेगा ? अर्थात् ऐसा अतिसाहस कोई नहीं करेगा।

मैंने प्रतिक्रमण सूत्रों पर श्री प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा रचित "प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी" नामक ग्रंथ का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है।

इस संबंध में मेरी सभी दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों, विद्वानों एवं ग्रंथों के सम्पादकों और प्रकाशकों से साग्रह प्रेरणा है कि हमारे महान पूर्वाचार्यों, गणधर भगवन्तों के सूत्रवाक्यों में किसी तरह का परिवर्तन परिवर्धन कभी न करें। हमें यदि दो तरह के पाठ मिल रहे हैं, तो दोनों को प्रमाण मानें, कहीं का पाठ किसी दूसरी जगह न जोड़ें। जिस प्रकार से नौ पदार्थ और नौ तत्त्व दोनों शब्द हमारे लिए प्रमाणिक हैं, उसी प्रकार उनका क्रम भी प्रतिक्रमण सूत्र, मूलाचार, गोम्मटसार, समयसार में जैसा है वैसा मानें और तत्त्वार्थसूत्र में जैसा है, वहाँ वैसा मानें। इसमें ही अपना सम्यग्दर्शन सुरक्षित रहेगा, किन्तु अपने अल्पज्ञान से दूसरे पाठ को संशोधन के नाम पर क्रम परिवर्तित कर देने से जिनाज्ञा का लोप होने के कारण सम्यग्दर्शन में दोष उत्पन्न होता है तथा मूल पाठ की वास्तविकता भंग हो जाती है।

आगम के संदर्भ में इसी प्रकार के अनेक विषय और भी हैं जिनके संबंध में अन्य पुस्तकों में मैंने सप्रमाण संकलन प्रस्तुत किया है। यहाँ जिनागम में वर्णित नौ पदार्थों—तत्त्वों का क्रम आप सूक्ष्मता से जानें और जीवन में कभी भी किसी ग्रंथ के मूलपाठ में परिवर्तन न करने का संकल्प करें, यही इस पुस्तक को पढ़ने की सार्थकता होगी। देखें—

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले[1]।

इसमें अभिमत जीव रु अजीव उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।

''[2]**जीवाजीवपुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खेहि णवहि पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण किं पि अत्थि, अणुवलंभादो।**''

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, इन नौ पदार्थों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता।

यहाँ इन्हें नौ पदार्थ कहा है।

समयसार में श्री कुंदकुंददेव ने कहा है—

१. क्रियाकलाप, मुनिचर्या पृ. २९२। २. षट्खण्डागम धवला टीका पु. १३, पृ. ६४

(१५ ज.) भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं[1]।।१३ अ.।।

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।१३।।

-शेर छंद-

(१५ ज.) भूतार्थ से जाने गए जो जीवाजीव हैं।
जो पुण्यपाप आस्रव संवर भी तत्त्व हैं।।
निर्जर व बंध मोक्ष ये सम्यक्त्व कहे हैं।
व्यवहार से ये मुक्ति के साधक भी हुए हैं।।१२ अ.।।

उत्थानिका— शुद्धनय से जानना ही सम्यक्त्व है, ऐसा सूत्रकार कहते हैं—

अन्वयार्थ— (भूतार्थेन अभिगताः जीवाजीवौ च पुण्यपापं च आस्रवसंवर-निर्जराः बंधः च मोक्षः सम्यक्त्वं) भूतार्थ से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नवतत्त्व ही सम्यक्त्व हैं।।१२।।

आत्मख्याति— अमूनि हि जीवादीनि **नवतत्त्वानि** भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं संपद्यंत एवामीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षलक्षणेषु नवतत्त्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापितस्यात्मनोनुभूतेरात्मख्याति-लक्षणायाः संपद्यमानत्वात्। तत्र विकार्यविकारकोभयं पुण्यं तथा पापं। आस्राव्यास्रावकोभयमास्रवः, संवार्यसंवारकोभयं संवरः, निर्जर्यनिर्जरकोभयं निर्जरा, बंध्यबंधकोभयं बंधः, मोच्यमोचकोभयं मोक्षः। स्वयमेकस्य पुण्यपापा-स्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षानुपपत्तेः। तदुभयं च जीवाजीवाविति। बहिर्दृष्ट्या **नवतत्त्वान्यमूनि** जीवपुद्गलयोरनादिबंध-पर्यायमुपेत्यैकत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि, अथ चैकजीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूय-मानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीषु **नवतत्त्वेषु** भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते। तथांतर्दृष्ट्या ज्ञायको भावो जीवो जीवस्य विकारहेतुरजीवः। केवला जीवविकाराश्च पुण्यपापास्रवसंवर-निर्जराबंधमोक्षलक्षणाः, केवला जीवविकारहेतवः पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जरा-

१. समयसार पूर्वार्ध, पृ. ६३, गा. (अ.१३, ज. १५)

बंधमोक्षा इति। **नवतत्त्वान्यमून्यपि** जीवद्रव्यस्वभावमपोह्य स्वपरप्रत्ययैकद्रव्य-पर्यायत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि, अथ च सकलकालमेवास्खलंतमेकं जीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानु-भूयमानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीष्वपि नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते। एवमसावेकत्वेन द्योतमानः शुद्धनयत्वेनानुभूयत एव। यात्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेवेति समस्तमेव निरवद्यं।

आत्मख्याति— ये जीव आदि नवतत्त्व भूतार्थनय से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही हो जाते हैं, क्योंकि तीर्थ प्रवृत्ति के लिए अभूतार्थनय से कहे गये जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष लक्षण वाले ये नवतत्त्व हैं उन तत्त्वों में एकत्व को प्रकट करने वाले, भूतार्थनय से एकत्व को प्राप्त कर शुद्धनय से व्यवस्थापित जो आत्मा है उसकी आत्मख्याति लक्षण वाली अनुभूति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् शुद्धनय से नवतत्त्वों को जानने से आत्मा की ही अनूभूति होती है। उनमें विकार्य और विकारक अर्थात् विकारी होने योग्य और विकार को करने वाला ऐसा दोनों रूप पुण्य है तथा इन दोनों रूप ही पाप भी है। आस्रव होने योग्य और आस्रव करने वाला ऐसे आस्राव्य और आस्रावक ये दोनों रूप आस्रव तत्त्व है। संवर होने योग्य और संवर करने वाला ऐसे संवार्य और संवारक इन दोनों रूप संवर तत्त्व है। निर्जरा होने योग्य और निर्जरा करने वाला ऐसे निर्जर्य और निर्जरक इन दोनों रूप निर्जरा तत्त्व है। बंध होने योग्य और बंध करने वाला ऐसे बंध्य और बंधक इन दोनों रूप बंध तत्त्व है। मुक्त होने योग्य और मुक्त होने वाला ऐसे मोच्य और मोचक इन दोनों रूप मोक्ष तत्व है। स्वयं एक में पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये सात तत्त्व बन नहीं सकते हैं उभयशब्द से जीव अजीव ये दो तत्त्व कहे जाते हैं अर्थात् पुण्य, पाप आदि सात पदार्थ जीवरूप भी हैं और अजीवरूप भी हैं। इनमें से विकार्य, आस्राव्य, संवार्य, निर्जर्य, बंध्य और मोच्य इनरूप जीव परिणत होता है तथा विकारक, आस्रावक, संवारक, निर्जरक, बंधक और मोचक इन रूप अजीव (पुद्गल) परिणत होता है।

बाह्यदृष्टि से विचार करने पर जीव और पुद्गल की अनादिबंधपर्याय को प्राप्त कर एकत्वरूप से इन नवतत्त्वों का अनुभव करने पर ये भूतार्थ हैं-

सत्यार्थ हैं और एक जीवद्रव्य के स्वभाव को प्राप्त कर उनका अनुभव करने पर वे अभूतार्थ-असत्यार्थ हैं इस लिए इन नव तत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही ही प्रद्योतित-शोभित हो रहा है। उसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से देखा जाये तो एक ज्ञायकभाव ही जीव है, उस जीव में विकार का कारण अजीव है।

पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष लक्षण वाले ये सात पदार्थ केवल जीव के विकार हैं अर्थात् पर निमित्त से ही निर्मित हुए हैं। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष लक्षण वाले ये सात पदार्थ केवल जीव के विकार हैं अर्थात् पर निमित्त से ही निर्मित हुए हैं। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये केवल जीव के विकार में हेतु हैं। जीव द्रव्य के स्वभाव को छोड़कर स्वपरनिमित्तक एक द्रव्य-पर्यायरूप से अनुभव करने पर ये नवतत्त्व भी भूतार्थ हैं तथा सर्वकाल में ही अस्खलित-नहीं चिगते हुए एक जीव के स्वभाव को प्राप्त कर उसका अनुभव करने पर ये नवतत्त्व अभूतार्थ हैं। इसलिए उन्हीं नवतत्त्वों में भूतार्थनय की अपेक्षा से एक जीव ही प्रकाशमान हो रहा है। इस प्रकार से यह एकरूप से प्रकाशमान होता हुआ शुद्धनय के द्वारा ही अनुभव में आता है। जो यह अनुभूति है वह आत्मख्याति ही है और जो आत्मख्याति है वही सम्यग्दर्शन है। इस तरह यह सभी कथन निर्दोष है।

विशेषार्थ— यहाँ पर ऐसा कहा गया है कि भूतार्थ से जाने गये नव पदार्थ ही सम्यक्त्व हैं। अब यहाँ पहले प्रश्न यह होता है कि यह भूतार्थ क्या है? गाथा ११वीं में श्रीकुंदकुंददेव ने स्वयं ही शुद्धनय को भूतार्थ कहा है और शुद्धनय से तो जीव के साथ कर्म का संबंध ही नहीं है पुनः जीव और पुद्गल के शुद्ध, पृथक्-पृथक् ही रहने पर आगे के पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात पदार्थ भला कैसे बन सकेंगे? अर्थात् नहीं बन सकते हैं। तो फिर आखिर यहाँ भूतार्थ से क्या अर्थ लेना? यह विचारणीय विषय हो जाता है। इसी गाथा की तात्पर्यवृत्ति टीका में श्रीजयसेनाचार्य ने व्यवहार के भूतार्थ-अभूतार्थ और शुद्धनय—निश्चय के भूतार्थ-अभूतार्थ ऐसे चार भेद कर दिये हैं अतः निश्चयनय अर्थात् भूतार्थनय के शुद्ध निश्चय और अशुद्धनिश्चय दो भेद हो गये हैं। इनमें शुद्ध निश्चयनय से तो नवतत्त्व व्यवस्था बन नहीं

सकती है किन्तु अशुद्धनिश्चयनय से ही नवतत्त्व की व्यवस्था होती है अतः यहाँ पर 'भूतार्थ शब्द से अशुद्धनिश्चयनयरूप भूतार्थ को लेना संगत प्रतीत होता है।

अथवा भूतार्थ के सत्यार्थ, यथार्थ, वास्तविक और प्रयोजनीभूत ये अर्थ करने चाहिए। तभी तो ये नवतत्त्व यथार्थ-जैसे के तैसे जाने गये 'सम्यक्त्व' हो जाते हैं।

प्रश्न—नवतत्त्व सम्यक्त्व कैसे होंगे? क्योंकि आत्मा का श्रद्धानरूप भाव सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर—आपका कथन ठीक है, फिर भी यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके अभेदोपचार से इन नवतत्त्वों को ही सम्यग्दर्शन कह दिया है। चूँकि ये नवतत्त्व जो श्रद्धानरूप सम्यक्त्व हैं उसके लिए कारण हैं अथवा उसके विषय हैं इस दृष्टि से भी विषय-नवतत्त्व और विषयी-सम्यक्त्व इनमें अभेद करके अभेदोपचार से इन्हें ही सम्यक्त्व कह दिया है। इसी बात को श्रीजयसेनस्वामी ने तात्पर्यवृत्ति टीका में स्पष्ट कर दिया है।

अब आप 'भूतार्थ' के विषय में श्री अमृतचंद्रसूरि का अभिप्राय देखिए-ये नवतत्त्व भूतार्थ से जाने गये सम्यग्दर्शन हो जाते हैं। ये अभूतार्थनय से कहे गये नवतत्त्व तीर्थ प्रवृत्ति के लिए हैं फिर भी इन नवतत्त्वों में एकत्व को प्रकट करने वाला जो भूतार्थनय है उसके द्वारा एकत्व का आश्रय लेकर शुद्धनय से व्यवस्थापित जो एक आत्मतत्त्व है उसी की अनुभूति होती है। इस कथन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ पर नवतत्त्वों को कहने वाला जो भूतार्थ है उसका यथार्थ अर्थ ही विवक्षित है। चूँकि आगे वे स्वयं कहते हैं कि ये पुण्य, पाप, आस्रव आदि तत्त्व केवल एक जीव से या केवल एक अजीव से उत्पन्न नहीं हुए हैं किन्तु ये जीव-अजीव के मेल से बने हुए हैं अतः जब हम बाह्यदृष्टि से देखते हैं तब ये अनादिकालीन बंध की अपेक्षा से भूतार्थ हैं किन्तु अंतर्दृष्टि से देखने पर एक जीव द्रव्य के स्वभाव की मात्र विवक्षा रहती है तब ये अभूतार्थ हो जाते हैं। अब यहाँ बाह्यदृष्टि और अंतर्दृष्टि का भी क्या अभिप्राय है? बाह्यदृष्टि अर्थात् औपाधिक भावों को ग्रहण करने वाला अशुद्ध निश्चयनय या व्यवहारनय उसकी अपेक्षा से ही ये नवतत्त्व भूतार्थ अर्थात् यथार्थ हैं-प्रयोजनीभूत हैं किन्तु

अंतर्दृष्टि अर्थात् शुद्धनिश्चयनय, उसकी अपेक्षा से मात्र जीव द्रव्य के शुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव को देखने पर ये नवतत्त्व स्वयं अभूतार्थ, अयथार्थ, अप्रयोजनीभूत हो जाते हैं। चूँकि इस अंतर्दृष्टि से अर्थात् स्वभावदृष्टि से देखने पर एक ज्ञायक भावमात्र ही जीव है पुनः व्यवहार से विचार करने पर जीव को विकारी-संसारी बनाने वाला अजीव द्रव्य है अतः भावपुण्य, भावपाप, भावआस्रव आदि सात पदार्थ केवल जीव के विकार हैं और द्रव्यपुण्य, द्रव्यपाप, द्रव्यआस्रव आदि जो पौद्गलिक सात पदार्थ हैं वे केवल जीव के विकार में हेतु हैं। इस कथन से भी आचार्य श्री अमृतचंद्रसूरि जीव-अजीव के परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध से ही सात पदार्थों की व्यवस्था मानकर उसे यथार्थ कह रहे हैं न कि सर्वथा अयथार्थ, क्योंकि आगे वे स्वयं कहते हैं कि जब जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर मात्र स्वपरनिमित्तक जो एकद्रव्य की पर्याये हैं। उनकी अपेक्षा से अनुभव होता है तो ये सभी **नवपदार्थ** भूतार्थ हैं किन्तु जब मात्र जीवद्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से अर्थात् परमभावग्राहक पारिणामिक भाव की अपेक्षा के देखने पर ये सब **नवतत्त्व** अभूतार्थ ही हैं इसलिए इन नवतत्त्वों में भूतार्थनय से अर्थात् शुद्ध निश्चयनय से मात्र एक जीवतत्त्व ही प्रकाशित होता है उसी का महामुनिगण शुद्धनय से निर्विकल्पध्यान में अनुभव करते हैं और उनका जो अनुभव है वही आत्मख्याति है, वही सम्यग्दर्शन है। यहाँ पर भी जो सम्यग्दर्शन लिया है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है जो कि वीतरागचारित्र के साथ अविनाभूत है।

तात्पर्य यही हुआ कि अशुद्धनिश्चयनय से ये नव पदार्थ होते हैं उनको जैसे का तैसा जानना ही सम्यक्त्व है। सातवें, आठवें आदि गुणस्थानों में आरोहण करने पर निर्विकल्प परमसमाधिरूप शुद्धोपयोग में इनका अनुभव नहीं होता है। अतः ये वहाँ पर अभूतार्थ हो जाते हैं किन्तु उसके पहले-पहले अशुद्धनिश्चयनय से ये भूतार्थ हैं, यथार्थ हैं। शुद्ध निश्चयनय से चौथे, पाँचवें और छठे गुणस्थानों तक 'इनमें एक शुद्ध जीव ही भूतार्थ-यथार्थ हैं, ऐसा श्रद्धान होता है। आगे निर्विकल्पध्यान में मात्र उसी शुद्ध जीव का अनुभव रह जाने से ये अभूतार्थ हो जाते हैं, अप्रयोजनीभूत हो जाते हैं। उसके पहले-पहले प्रयोजनीभूत हैं क्योंकि सारा द्वादशांग इन्हीं नवतत्त्वों पर ही आधारित है।

भूमिका— अथ कश्चिदासन्नभव्यः पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्वं परिज्ञाय विशुद्धज्ञान-दर्शनस्वभावं निजस्वरूपं भावयति। विस्तररुचिः पुनर्नवभिरधिकारैः समयसारं ज्ञात्वा पश्चाद्भावनां करोति। तद्यथा-विस्तररुचिशिष्यं प्रति **जीवादिनवपदार्थाधिकारैः** समयसारव्याख्यानं क्रियते।

उत्थानिका— तत्रादौ नवपदार्थाधिकारगाथाया आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षणनिर्विकल्पसामायिकस्थितानां यच्छुद्धात्मरूपस्य दर्शनमनुभवनमवलोकनमुपलब्धिः संवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिरनुभूतिस्तदेव निश्चयनयेन निश्चयचारित्राविनभावि निश्चयसम्यक्त्वं भण्यते। तदेव च गुणगुण्यभेदरूपनिश्चनयेन शुद्धात्मस्वरूपं भवतीत्येका पातनिका। अथवा **नवपदार्था** भूतार्थेन ज्ञाताः संतस्त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वाद् व्यवहारसम्यक्त्वनिमित्तं भवंति, निश्चयनयेन तु स्वकीयशुद्धपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति द्वितीया चेति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्ररूपयतिः—

भूदत्थेणाभिगदा, जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर-बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१५।।
भूतार्थेनाऽभिगता जीवाऽजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रव-संवर-निर्जरा-बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।१५।।

तात्पर्यवृत्ति— [१]भूदत्थेण भूतार्थेन निश्चयनयेन शुद्धनयेन अभिगदा अभिगता निर्णीता निश्चिता ज्ञाताः संतः। के ते। जीवाजीवा य पुण्यपावं च आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवर-निर्जराबंधमोक्षस्वरूपा नव पदार्थाः सम्मत्तं त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वात्कारणत्वात्सम्यक्त्वं भवंति। निश्चयेन परिणाम एव सम्यक्त्वमिति। **नव पदार्था** भूतार्थेन ज्ञाताः संत सम्यक्त्वं भवंतीत्युक्तं भवद्भिस्तत्कीदृशं भूतार्थपरिज्ञानमिति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह। यद्यपि **नव पदार्थाः** तीर्थवर्त्तनानिमित्तं प्राथमिकशिष्यापेक्षया भूतार्था भण्यंते तथाप्यभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले अभूतार्था असत्यार्थाः शुद्धात्मस्वरूपं न भवंति। तस्मिन् परमसमाधिकाले **नवपदार्थमध्ये** शुद्धनिश्चयनयेनैक एव शुद्धात्मा प्रद्योतते प्रकाशते प्रतीयते अनुभूयत इति। या चानुभूतिः प्रतीतिः शुद्धात्मोपलब्धिः सा चैव निश्चयसम्यक्त्वमिति सा चैवानुभूतिर्गुणगुणि-

१. समयसार पूर्वार्ध, पृ. ७७ से ७९ संस्कृत व हिन्दी

नोर्निश्चयनयेनाभेदविवक्षायां शुद्धात्मस्वरूपमिति तात्पर्यं। किं च, ये च प्रमाणनयनिक्षेपाः परमात्मादितत्त्वविचारकाले सहकारिकारणभूतास्तेपि सकिवल्पावस्थायामेव भूतार्थाः। परमसमाधिकाले पुनरभूतार्थास्तेषु मध्ये भूतार्थेन शुद्धजीव एक एव प्रतीयते। इति **नवपदार्थाधिकारगाथा गता**।।१५।।

यहाँ से श्रीजयसेनाचार्य ने जीवाधिकार प्रारंभ किया है—

भूमिका— कोई आसन्न भव्य जीव इस पीठिका के व्याख्यानमात्र से ही हेय-उपादेय तत्त्वों को जानकर विशुद्धज्ञानदर्शन स्वभाव वाले अपने स्वरूप की भावना करता है उसका अनुभव करता है किन्तु पुनः विस्तारुचिवाला कोई शिष्य आगे कहे जाने वाले नव अधिकारों के द्वारा समयसारस्वरूप-अपनी शुद्ध आत्मा को समझकर अनंतर उसकी भावना करता है। उसी विस्तार-रुचि वाले शिष्य के प्रति जीवादि नव पदार्थ के नव अधिकारों से इस समयसार का व्याख्यान किया जा रहा है।

उत्थानिका— उनमें सर्वप्रथम नवपदार्थ के अधिकाररूप गाथा में आर्त, रौद्रध्यान के परित्याग लक्षण, निर्विकल्पसामायिक में जो स्थित हैं, ऐसे मुनियों के जो शुद्ध आत्मा के स्वरूप का दर्शन है, अनुभवन है, अवलोकन है, उपलब्धि है, संवित्ति है, प्रतीति है, ख्याति है और अनुभूति है वही निश्चयनय से निश्चयचारित्र के साथ अविनाभाव संबंध रखने वाला ऐसा निश्चयसम्यक्त्व या वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है और वही सम्यक्त्व गुण-गुणी में अभेद को कहने वाले ऐसे निश्चयनय से शुद्धात्मा का स्वरूप है। इस प्रकार से यह एक पातनिका अर्थात् उत्थानिका हुई।

अथवा भूतार्थ से जाने गये जो जीवादि नव पदार्थ हैं वे ही अभेदापचार से सम्यक्त्व का विषय होने से व्यवहारसम्यक्त्व के निमित्त होते हैं, किन्तु निश्चयनय से अपनी आत्मा का शुद्ध परिणाम ही सम्यक्त्व है, इस प्रकार से यह दूसरी उत्थानिका हुई। इस तरह इन दोनों उत्थानिकाओं को मन में रखकर आगे का सूत्र प्ररूपित करते हैं—

अन्वयार्थ— (भूयत्थेण अभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च आसव-संवरणिज्जर बंधो य मोक्खो सम्मत्तं) भूतार्थ से-अशुद्ध निश्चयनय से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये ही सम्यक्त्व

हैं।।१५।।

तात्पर्यवृत्ति— भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय या शुद्धनय, इस शुद्धनय के द्वारा निर्णय किये गये-निश्चित किये गये-जाने गये जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नव पदार्थ हैं, वे ही अभेद के उपचार के द्वारा सम्यक्त्व होते हैं, क्योंकि ये नव पदार्थ ही सम्यक्त्व के विषय हैं और सम्यक्त्व के लिए कारण हैं। निश्चयनय से आत्मा का श्रद्धानरूप परिणाम ही सम्यक्त्व है।

प्रश्न— नवपदार्थ भूतार्थ से जाने गये सम्यक्त्व होते हैं ऐसा आपने कहा है तो वह भूतार्थ परिज्ञान कैसा होता है?

उत्तर— यद्यपि तीर्थप्रवृत्ति के लिए प्राथमिकशिष्यों की अपेक्षा से ये नव पदार्थ भूतार्थ कहे जाते हैं फिर भी अभेदरत्नत्रयलक्षण निर्विकल्पसमाधि के काल में अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ है क्योंकि ये शुद्धात्मा के स्वरूप नहीं है। उस परमसमाधि के काल में इन नव पदार्थों में से शुद्धनिश्चयनय से एक शुद्ध आत्मा ही प्रद्योतित होता है-प्रकाशित होता है, प्रतीति में आता है और अनुभव में आता है। जो यह अनुभूति है, प्रतीति है, शुद्धात्मा की उपलब्धि है वह ही निश्चयसम्यक्त्व है। इस प्रकार वह अनुभूति ही गुण और गुणी में निश्चयनय से अभेद की विवक्षा करने पर शुद्धात्मा का स्वरूप है यह अभिप्राय हुआ।

उसी प्रकार से जो प्रमाण, नय और निक्षेप हैं वे भी परमात्मा आदि तत्त्वों के विचार के समय सहकारी कारणभूत हैं अतः वे भी सविकल्प अवस्था में ही भूतार्थ हैं किन्तु वे परमसमाधि के काल में अभूतार्थ हैं उन सब में भूतार्थ से एक शुद्ध जीव ही प्रतीति में आता है। इस प्रकार नव पदार्थ के अधिकार की गाथा हुई।।१५।।

भावार्थ— यहाँ पर तो स्पष्टरूप से जयसेनाचार्य ने कह दिया है कि ये नव पदार्थ अभेदरत्नत्रय लक्षण निर्विकल्पध्यान में अभूतार्थ हैं इसके पहले तक भूतार्थ हैं। इससे इस भूतार्थ का प्रयोजनीभूत यह अर्थ सुघटित हो जाता है और इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि शुद्धोपयोग के पहले-पहले यह निश्चयसम्यक्त्व भी नहीं होता है। यहाँ पर भी जो भूतार्थ को निश्चयनय कहा है उससे अशुद्धनिश्चयनय ही ठीक लगता है क्योंकि शुद्धनिश्चयनय से तो जीव

त्रिकाल शुद्ध सिद्ध ही है। ऐसे ही प्रमाण, नय आदि भी छठे गुणस्थान तक प्रयोजनीभूत ही हैं।

इसी गाथा को श्री कुंदकुंद स्वामी ने अपने मूलाचार ग्रंथ में लिया है—

[१]भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।२०३।।

अवयवार्थपूर्विका वाक्यार्थप्रतिपत्तिरिति कृत्वा तावदवयवार्थो व्याख्यायते। भूदत्थेण-भूतश्चासावर्थश्च भूतार्थस्तेन। यद्यप्ययं भूतशब्दः पिशाचजीवसत्य-पृथिव्याद्यनेकार्थे वर्तते तथाप्यत्र सत्यवाची परिगृह्यते, तथार्थशब्दो यद्यपि पदार्थ प्रयोजनस्वरूपाद्यर्थे वर्तते तथापि स्वरूपार्थे वर्तमानः परिगृहीतोऽन्यार्थवाचकेन प्रयोजनाभावात्, भूतार्थेन सत्यस्वरूपेण याथात्म्येन। अभिगदा-अभिगताः अधिगताः स्वेन स्वेन स्वरूपेण प्रतिपन्नाः जीवाश्चेतनलक्षणा ज्ञानदर्शनसुखदुःखा-नुभवनशीलाः। तद्व्यतिरिक्ता अजीवाश्च पुद्गलधर्माधर्मास्तिकायाकाशकालाः रूपादिगतिस्थित्यवकाशवर्तनालक्षणाः। पुण्यं-शुभप्रकृतिस्वरूपपरिणतपुद्गलपिंडे जीवाह्लादननिमित्तः। पावं-पापं चाशुभकर्मस्वरूपपरिणतपुद्गलप्रचयो जीवस्या-सुखहेतुः। आसव-आसमन्तात् स्रवत्युपढौकते कर्मानेनास्रवः। संवर-कर्मागमन-द्वारं संवृणोतीति संवरणमात्रं वा संवरोऽपूर्वकर्मागमननिरोधः। णिज्जर-निर्जरणं निर्जरयत्यनया वा निर्जरा जीवलग्नकर्मप्रदेशहानिः। बंधो-बध्यतेऽनेन बन्धनमात्रं वा बन्धो जीवकर्मप्रदेशान्योन्यश्संश्लेषोऽस्वतंत्रीकरणं। मोक्खो-मुच्यतेऽनेन मुक्तिर्वा मोक्षो जीवप्रदेशानां कर्मरहितत्वं स्वतंत्रीभावः। चशब्दः समुच्च्यार्थः। सम्मत्तं-सम्यक्त्वं। एतेषां यथाक्रम एव न्यायः, जीवस्य प्राधान्यादुत्तरोत्तराणां पूर्वपूर्वोपकाराय प्रवृत्तत्वाद्वा। न चैतेषामभावो ज्ञानरूपमुपचारो वा धर्मार्थकाम-मोक्षाणाम-भावादाश्रयाभावात्मुख्याभावाच्च प्रमाणप्रमेयव्यवहाराभावाल्लोक-व्यवहाराभावाच्च। जीवाजीवा भूतार्थेनाधिगताः सम्यक्त्वं। तथा पुण्यपापं चाधिगतं सम्यक्त्वं। तथा आस्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाश्चाधिगताः सन्तः सम्यक्त्वं भवति। ननुकथमेतेऽधिगताः सम्यक्त्वं यावतैषामधिगतानां यत्प्रधानं तत् सम्यक्त्वमित्युक्तं, नैष दोषः, श्रद्धानरूपैवेयमधिगतिरन्यथा परमार्थाधिगतेरभावात् कारणे कार्योप-चाराद्वा जीवादयोऽधिगताः सम्यक्त्वमित्युक्तं। जीवादीनां परमार्थानां यच्छ्रद्धानं

१. मूलाचार पूर्वार्ध, पृ. १६८, गाथा २०३, टीका संस्कृत १६८ से १६९ संस्कृत, हिन्दी

तत्सम्यक्त्वं। अनेन न्यायेनाधिगमलक्षणं दर्शनमुक्तं भवति।।२०३।।

गाथार्थ-सत्यार्थरूप से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये ही सम्यक्त्व हैं।।२०३।।

आचारवृत्ति-अवयवों के अर्थपूर्वक ही वाक्य के अर्थ का ज्ञान होता है, इसलिए पहले अवयव के अर्थ का व्याख्यान करते हैं। अर्थात् पदों से वाक्य रचना होती है इसलिए प्रत्येक पद का अर्थ पहले कहते हैं जिससे वाक्यों का ज्ञान हो सकेगा।

भूत और अर्थ इन दो पदों से भूतार्थ बना है। उसमें से यद्यपि भूत शब्द पिशाच, जीव, सत्य, पृथ्वी आदि अनेक अर्थों में विद्यमान हैं फिर भी यहाँ पर सत्य अर्थ में होना चाहिए। उसी प्रकार से अर्थ शब्द यद्यपि पदार्थ, प्रयोजन और स्वरूप आदि अनेक अर्थों का वाचक है फिर भी यहाँ पर स्वरूप अर्थ में लिया गया है क्योंकि यहाँ पर अन्य अर्थ का प्रयोजन नहीं है। तात्पर्य यह है कि जो पदार्थ जिस रूप से व्यवस्थित हैं, वे अपने-अपने स्वरूप से ही जाने गये हैं, सम्यक्त्व हैं।

जीव का लक्षण चेतना है। वह चेतना ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख के अनुभव स्वभाव वाली है। उससे व्यतिरिक्त पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल ये अजीव द्रव्य हैं। रूप, रस, गंध और स्पर्श गुणवाला पुद्गल है। धर्मद्रव्य जीव-पुद्गलों की गति में सहायक होने से गति लक्षण वाला है। अधर्मद्रव्य इनकी स्थिति में सहायक होने से स्थितिलक्षण वाला है। आकाश द्रव्य सभी द्रव्यों को अवकाश देने वाला होने से अवकाश लक्षण वाला है और काल द्रव्य वर्तना लक्षण वाला है। शुभ प्रकृति स्वरूप परिणत हुआ पुद्गल पिण्ड पुण्य कहलाता है जो कि जीवों में आल्हादरूप सुख का निमित्त है। अशुभ कर्म स्वरूप परिणत हुआ पुद्गल पिण्ड पापरूप है जो कि जीव के दुःख का हेतु है। जिससे कर्म आ-सब तरफ से, स्रवति-आते हैं वह आस्रव है अर्थात् कर्मों का आना आस्रव है। कर्म के आगमन-द्वार को जो रोकता है अथवा कर्मों का रुकना मात्र ही संवर है अर्थात् आने वाले कर्मों का आना रुक जाना संवर है। कर्मों का निर्जीर्ण होना अथवा जिसके द्वारा कर्म निर्जीर्ण होते हैं, झड़ते हैं, वह निर्जरा है। अर्थात् जीव में लगे हुए कर्म प्रदेशों की हानि होना निर्जरा है। यहाँ व्याकरण के लक्षण की व्युत्पत्ति से निर्जरणं अनया

निर्जरयति वा इस प्रकार से भाव अर्थ में और करण-साधन में विवक्षित है, जिसका ऐसा अर्थ है कि कर्मों का झड़ना यह तो द्रव्य निर्जरा है और जिन परिणामों से कर्म झड़ते हैं, वे परिणाम ही भावनिर्जरा है।

जिसके द्वारा कर्म बंधते हैं, अथवा बंधना मात्र ही बंध का लक्षण है (बध्यतेऽनेन बन्धनमात्रं वा) इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी भावबंध और द्रव्यबंध विवक्षित हैं। जीव के प्रदेश और कर्म प्रदेश-परमाणुओं का परस्पर में संश्लेष हो जाना-एकमेक हो जाना बंध है, जो जीव और पुद्गलवर्गणा दोनों की स्वतंत्रता को समाप्त कर उन्हें परतंत्र कर देता है।

जिसके द्वारा जीव मुक्त होवे, छूट जाये अथव छूटना मात्र ही मोक्ष है। इसमें भी व्युत्पत्ति (मुच्यतेऽनेन मुक्तिर्वा) के लक्षण से भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष विवक्षित है अर्थात् जिन परिणामों से आत्मा कर्म से छूटता है, वह भावमोक्ष है और कर्मों से छूटना ही द्रव्य मोक्ष है, सो ही कहते हैं कि जीव के प्रदेशों का कर्म से रहित हो जाना, जीव की परतंत्र अवस्था समाप्त होकर उसका पूर्ण स्वतंत्र भाव प्रकट हो जाना ही मोक्ष है।

इन नव पदार्थों का जो यहाँ क्रम लिया है वही न्यायपूर्ण है, क्योंकि जीव द्रव्य ही प्रधान है अथवा आगे-आगे के पदार्थ पूर्व-पूर्व के उपकार के लिए प्रवृत्त होते हैं।

शंका—इन पदार्थों का अभाव है अथवा ये पदार्थ ज्ञान रूप ही हैं या ये उपचार रूप ही हैं ? अर्थात् शून्यवादी किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं मानते हैं सो वे ही सबका अभाव कहते हैं। विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध सभी चर-अचर जगत् को एक ज्ञान रूप ही मानते हैं तथा सामान्य बौद्ध या ब्रह्माद्वैतवादी सभी वस्तुओं को उपचार अर्थात् कल्पनारूप ही मानते हैं। उनका कहना है कि यह सम्पूर्ण विश्व अविद्या का ही विलास है। इन सम्प्रदायवादियों की अपेक्षा से ये तीन शंकाएँ उठाई गई हैं।

समाधान—आप ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि यदि जीव पदाथों को या मात्र जीव को ही न माना जाये, तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का अभाव हो जायेगा। अथवा यदि जीव को ज्ञानरूप ही मान लोगे तो ज्ञान तो एक गुण है और जीव गुणी है, ज्ञान गुण के ही मानने से उसके आश्रय का अभाव हो जायेगा अर्थात् आश्रयभूत जीव पदार्थ नहीं सिद्ध हो

सकेगा। यदि जीवादि को उपचार कहोगे तो मुख्य का अभाव हो जायेगा और मुख्य के बिना उपचार की प्रवृत्ति भी कैसे हो सकेगी तथा इन एकान्त मान्यताओं से प्रामण और प्रमेय अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय रूप व्यवहार का भी अभाव हो जायेगा और तो और, लोक-व्यवहार का ही अभाव हो जाता है अर्थात् जो कुछ भी लोकव्यवहार चल रहा है, वह सब समाप्त हो जावेगा।

सत्यार्थस्वरूप से जने गये ये जीव-अजीव सम्यक्त्व हैं। उसी प्रकार से सत्यार्थ स्वरूप से जाने गये पुण्य और पाप ही सम्यक्त्व हैं। तथैव सत्यार्थ स्वरूप से जाने गये आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ही सम्यक्त्व हैं।

शंका— ये जाने गये सभी सम्यक्त्व कैसे हैं ? सत्यार्थरूप से जाने गये इनमें से जो प्रधान है वह सम्यक्त्व है ऐसा कहना तो युक्त हो ही सकता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह अधिगति-ज्ञान श्रद्धानरूप ही है अन्यथा-यदि ऐसा नहीं मानोगे, तो परमार्थरूप से जानने का अभाव हो जायेगा। अथवा कारण में कार्य का उपचार होने से जाने गये जीवादि पदार्थों को ही सम्यक्त्व कह दिया है। किन्तु वास्तव में परमार्थरूप जीवादि पदार्थों का जो श्रद्धान है, वह सम्यक्त्व है। इस न्याय से यहाँ पर अधिगम लक्षण सम्यग्दर्शन को कहा गया है-ऐसा समझना।

गोम्मटसार जीवकाण्ड के अनुसार देखें—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं[१]।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंतित्ति।।६२१।।
जीवदुगं उत्तत्थं जीवा पुण्णा हु सम्मगुण सहिदा।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति।।६२२।।

जीवा अजीवाः तेषां पुण्यपापद्वयं आस्रवः संवरो निर्जरा बन्धो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवन्ति। पदार्थशब्दः सर्वत्र सम्बन्धनीयः,-जीवपदार्थः इत्यादिः।।६२१।।

जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्व जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवाः सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्युः। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु-नियमेन।।६२२।।

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड पृ. ८६१ से गाथा ६२१, ६२२, जीवतत्त्वप्रदीप टीका पृ. ८६२, ज्ञानपीठ से प्रकाशित

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ मे इनका कम बदला है—

[१]तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्। अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह-

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।।४।।

तत्र चेतनालक्षणो जीवः। सा च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते। तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः। शुभाशुभकर्मागमद्वाररूपं आस्रवः। आत्म-कर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः। आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः। एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा। कृत्स्नकर्म वियोगलक्षणो मोक्षः। एषां प्रपञ्च उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम्। तदुपकारार्थत्वात्तदनन्तरमजीवाभिधानम्। तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमा-स्रवग्रहणम्। तत्पूर्वकत्वातदनन्तरं बन्धाभिधानम्। संवृतस्य बन्धाभावा-त्तत्प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्। संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्त-दन्तिके निर्जरावचनम्। अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम्।

इह पुण्यपापग्रहणं कर्त्तव्यम्। 'नव पदार्थाः' इत्यन्यैरप्युक्तत्वात्। न कर्त्तव्यम् आस्रवे बंधे चान्तर्भावात्। यद्येवमास्रवादिग्रहणमनर्थकं, जीवाजीवयोरन्तर्भावात्। नानर्थकम्। इह मोक्षः प्राकृतः। सोऽवश्यं निर्देष्टव्यः। स च संसारपूर्वकः। संसारस्य प्रधानहेतुरास्रवो बन्धश्च। मोक्षस्य प्रधानहेतु संवरो निर्जरा च। अतः प्रधानहेतुहेतुमत्फलनिदर्शना-र्थत्वात्पृथगुपदेशः कृतः। दृश्यते हि सामान्येऽन्तर्भूतस्यापि विशेषस्य पृथगुपादानं प्रयोजनार्थम्। क्षत्रिया आयाताः सूरवर्माऽपि इति।

तत्त्वशब्दो भाववाचीत्युक्तः। स कथं जीवादिभिर्द्रव्यवचनैः सामानाधिकरण्यं प्रतिपद्यते? अव्यतिरेकात्तद्भावाध्यारोपाच्च सामाना-धिकरण्यं भवति। यथा 'उपयोग एवात्मा' इति। यद्येवं तत्तल्लिङ्ग-संख्यानुवृत्तिः प्राप्नोति ? विशेषणविशेष्यसंबन्धे सत्यपि शब्दशक्तिव्य-पेक्षया उपात्तलिङ्गसंख्याव्यतिक्रमो न भवति।' अयं क्रम आदिसूत्रेऽपि योज्यः।

जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है यह पहले कहे आये हैं। अब तत्त्व कौन-कौन हैं, इस बात के बतलाने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं—

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं।।४।।

१. सर्वार्थसिद्धौ, पृ. १०, ११, १२

इनमें से जीव का लक्षण चेतना है जो ज्ञानादिक के भेद से अनेक प्रकार की है। जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव है। शुभ और अशुभ कर्मों के आनेके द्वार रूप आस्रव है। आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर मिल जाना बंध है। आस्रव का रोकना संवर है। कर्मों का एकदेश अलग होना निर्जरा है और सब कर्मों का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष है। इनका विस्तार से वर्णन आगे करेंगे। सब फल जीव को मिलता है, अतः सूत्र के प्रारंभ में जीव का ग्रहण किया है। अजीव-जीव का उपकारी है यह दिखलाने के लिए जीव के बाद अजीव का कथन किया है। आस्रव जतीव और अजीव दोनों को विषय करता है अतः इन दोनों के बाद आस्रव का ग्रहण किया है। बंध आस्रव पूर्वक होता है, इसलिए आस्रव के बाद बंध का कथन किया है। संवृत जीव के बंध नहीं होता, अतः संवर बंध का उल्टा हुआ इस बात का ज्ञान कराने के लिए बंध के बाद संवर का कथन किया है। संवर के होने पर निर्जरा होती है, इसलिए संवर के पास निर्जरा कही है। मोक्ष अन्त में प्राप्त होता है, इसलिए उसका अन्त में कथन किया है।

शंका—सूत्र में पुण्य और पाप का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि पदार्थ नौ हैं, ऐसा दूसरे आचार्यों ने भी कथन किया है।

समाधान—पुण्य और पाप का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका आस्रव और बंध में अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्र में अलग से आस्रव आदि का ग्रहण करना निरर्थक है, क्योंकि उनका जीव और अजीव में अन्तर्भाव हो जाता है।

समाधान—आस्रव आदि का ग्रहण करना निरर्थक नहीं है, क्योंकि यहाँ मोक्ष का प्रकरण है इसलिए उसका कथन करना आवश्यक है। वह संसारपूर्वक होता है और संसार के प्रधान कारण आस्रव और बंध हैं तथा मोक्ष के प्रधान कारण संवर और निर्जरा है अतः प्रधान हेतु हेतु वाले और उनके फल के दिखलाने के लिए अलग-अलग उपदेश दिया है। देखा भी जाता है कि किसी विशेष का सामान्य में अन्तर्भाव हो जाता है तो भी प्रयोजन के अनुसार उसका अलग से ग्रहण किया जाता है। जैसे क्षत्रिय आये हैं और सूरवर्मा भी। यहाँ यद्यपि सूरवर्मा का क्षत्रियों में अन्तर्भाव हो जाता है, तो भी प्रयोजन के अनुसार उसका अलग से ग्रहणकिया है। इसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिए।

शंका—तत्त्व शब्द भाववाची है यह पहले कह आये हैं, इसलिए उसका द्रव्यवाची जीवादि शब्दों के साथ समानाधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—एक तो भाव द्रव्य से अलग नहीं पाया जाता, दूसरे भाव में द्रव्य का अध्यारोप कर लिया जाता है, इसलिए समानाधिकरण बन जाता है। जैसे-'उपयोग ही आत्मा है' इस वचन में गुणवाची उपयोग शब्द के साथ द्रव्यवाची आत्मा शब्द का समानाधिकरण है, उसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिए।

शंका—यदि ऐसा है तो विशेष्य का जो लिंग और संख्या है वही विशेषण को भी प्राप्त होते हैं ?

समाधान—व्याकरण का ऐसा नियम है कि 'विशेषण-विशेष्य संबंध के रहते हुए भी शब्द शक्ति की अपेक्षा जिसने जो लिंग और संख्या प्राप्त कर ली है, उसका उल्लंघन नहीं होता।' अतः यहाँ विशेष्य और विशेषण से लिंग और संख्या के अलग-अलग रहने पर भी कोई दोष नहीं है। यह क्रम प्रथम सूत्र में भी लगा लेना चाहिए।

तत्त्वार्थराजवार्तिक के कतिपय अंश—

[1]**त्रिकालविषयजीवनानुभवनात् जीवः।।७।।** दशसु प्राणेषु यथोपात्त-प्राणापर्यायेण त्रिषु कालेषु जीवनानुभवनात् 'जीवति, अजीवीत्, जीविष्यति' इति वा जीव। तथा सति सिद्धानामपि जीवत्वं सिद्धं जीवितपूर्वत्वात्। संप्रति न जीवन्ति सिद्धाः, भूतपूर्वगत्या जीवत्वमेषाम् इत्यौपचारिकत्वं स्यात्, मुख्यं चेष्यतेः, नेष दोषः, भावप्राणज्ञानदर्शनानुभवनात् सांप्रतिकमपि जीवत्वमस्ति। अथवा रूढिशब्दोऽयम्। रूढौ च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थेवेति कादाचित्कं जीवनमपेक्ष्य सर्वदा वर्तते गोशब्दवत्।

तद्विपर्ययोऽजीवः।।८।। यस्य जीवनमुक्तलक्षणं नास्त्यसौ तद्विपर्ययाद् अजीव इत्युच्यते।

आस्रवत्यनेन आस्रवणमात्रं वा आस्रवः।।९।। येन कर्मास्रवति यद्वा आस्रवणमात्रं वा स आस्रवः।

बध्यतेऽनेन बंधनमात्रं वा बन्धः।।१०।। बध्यते येन अस्वतन्त्रीक्रियते येन, अस्वतन्त्रीकरणमात्रं वा बन्धः।

---

१. पृ. ६८ से ६९ एवं ७३ से ७४

संव्रियतेऽनेन संवरणमात्रं वा संवरः।।११।। येन संव्रियते येन संरुध्यते, संरोधनमात्रं वा संवरः।

निर्जीर्यते यया निर्जरणमात्रं वा निर्जरा।।१२।। निर्जीर्यते निरस्यते यया, निरसनमात्रं वा निर्जरा।

मोक्ष्यते येन मोक्षणमात्रं वा मोक्षः।।१३।। मोक्ष्यते अस्यते येन असनमात्रं वा मोक्षः।

त्रैकालिक जीवन का अनुभवन करने वाला होने से जीव है। पाँच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन दस प्राणों में से अपनी पर्यायानुसार गृहीत प्राणों के द्वारा तीनों कालों में जीवन का अनुभव करने वाला होने से "जीता है, जीता था और जीवेगा।" इसलिए यह जीव है। ऐसा मानने पर सिद्धों के भी जीवत्व पूर्व होने से जीवत्व सिद्ध होता है। वर्तमान में सिद्ध जीवित नहीं हैं, भूत प्रज्ञापन नय की अपेक्षा जीवत्व होने से सिद्धों में औपचारिक जीवत्व है, मुख्य नही, ऐसी आशंका भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि सिद्धों में ज्ञान, दर्शनादि भाव प्राणों का अनुभव वर्तमान में भी है अतः मुख्य ही जीवत्व है। अथवा-जीव शब्द की यह व्युत्पत्ति रूढ़ि से और और रूढ़ि में क्रिया, व्युत्पत्ति अर्थ रहता है-वह कदाचित् जीवन की अपेक्षा से होकर सदा काल रहता है गौ शब्द के समान। अर्थात् "गच्छतीति गौ, जो चले सो गौ" यहाँ बैठी हुई गौ में भी गौ व्यवहार होता है, क्योंकि कभी तो वह चलती थी, उसी प्रकार कभी तो सिद्धों ने द्रव्य प्राणों को धारण किया था। अतः रूढ़िवश उनमें जीव व्यवहार होता रहता है।।७।।

जीव से विपरीत लक्षणवाला अजीव है, जिसमें जीव का ऊपर कथित लक्षण नहीं पाया जाता है, वह जीव से विपरीत होने से अजीव है।।८।।

जिसके द्वारा कर्म आते हैं वह या कर्मों का आना मात्र आस्रव है। जिनसे कर्म बँधते हैं, वह वा कर्मों का बंधना बंध है। कर्म बंधना अर्थात् जिससे आत्मा परतंत्र हो जाता है वा परतंत्र कर दिया जाता है वह बंध है। जिनसे कर्म रुके वह वा रुकना मात्र संवर है। जिनसे आते हुए कर्मों का निरोध किया जाता है वह या कर्मों का आना रुक जाता है, वह संवर तत्त्व है। जिनसे कर्म झड़ते हैं-वह वा उनका झड़ना निर्जरा है। जिनसे कर्म निजरणा कर दिये जाते हैं वह

या उनका निरसन हो जाना निर्जरा है। जिससे कर्मों का उच्छेद किया जाता है वह या उच्छेद होता है वह मोक्ष है।

तादर्थ्यात् परिस्पन्दस्य आदौ जीवग्रहणम्।।२१।। योऽयं मोक्षमार्ग-तत्त्वाविष्करणपरिस्पन्दः स आत्मार्थः, तस्य मोक्षपर्यायपरिणामात्। यो वा जीवाद्युपदेशपरिस्पन्दः स आत्मार्थः तस्योपयोगस्वाभाव्ये सति ग्राहकत्वात्। अत आदौ जीवग्रहणम्।

तदनुग्रहार्थत्वात् तदनन्तरमजीवाभिधानम्।।२२।। यतः शरीरवाङ्मनः प्राणापानादिनोपकारेणऽजीव आत्मानमनुगृह्णति, अतस्तदनन्तरमजीवाभिधानम्।

तदुभयाधीनत्वात् तत्समीपे आस्रवग्रहणाम्।।२३।। यत आत्मकर्मणोः परस्पराश्लेषे सत्यास्रवप्रसिद्धिर्भवति, अतस्तत्समीपे आस्रवग्रहणाम्।

तत्पूर्वकत्वाद बन्धस्य ततः परं बन्धवचनम्।।२४।। यत आस्रवपूर्वको बन्धः ततः परं वचनं तस्य क्रियते।

संवृतस्य बन्धाभावात् तत्प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं संवरवचनम्।।२५।। यतः संवृतस्यात्मनो बन्धो नास्ति ततस्तत्प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्।

संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदन्तिके निर्जरावचनम्।।२६।। यतः संवरपूर्विका निर्जरा ततस्तदन्तिके निर्जरावचनम्।

अन्ते प्राप्यत्वात् मोक्षस्यान्ते वचनम्।।२७।। निर्जीणेषु कर्मस्वन्ते मोक्षः प्राप्यत इत्यन्ते वचनम्।

पुण्यपापपदार्थोपसंख्यानमिति चेत्; न; आस्रवे बन्धे वा अन्तर्भावात्।।२८।। स्यादेतत्-पुण्यपापपदार्थयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् अन्यैरप्युक्तत्वादिति; तन्न; किं कारणम्? आस्रवे बन्धे वा अन्तर्भावात्, यत आस्रवो बन्धश्च पुण्यपापात्मकः।

परिस्पन्द का तादर्थ्य (जीव के लिए) होने से आदि में जीव ग्रहण किया है। जो यह मोक्षमार्ग के उपदेश आदि का प्रयत्न है वह जीव के लिए किया जाता है। वह जीव ही मोक्षपर्याय रूप परिणत होता है। अथवा जो जीवादि के उपदेश का परिस्पन्द है वह आत्मा के लिए है। क्योंकि उपयोग स्वभाव होने से आत्मा ही उसको ग्रहण कर सकता है। इसलिए तत्त्वों में सर्व प्रथम जीव को स्थान दिया है। जीव का अनुग्रह करने वाला होने से जीव के अनन्तर अजीव

को स्थान दिया हैं क्योंकि शरीर, वचन, मन, प्राणापनादि उपकार द्वारा अजीव, आत्मा का अनुग्रह करता है-प्रकृष्ट उपकार करता है; अतः जीव के बाद अजीव को ग्रहण किया है। जीव और पुद्गल के संबंधाधीन होने से दोनों के समीप आस्रव को ग्रहण किया है। जीव और पुद्गल के संबंधाधीन होने से दोनों के समीप आस्रव को ग्रहण किया है। क्योंकि आत्मा और पुद्गलवर्गणा रूप कर्मों का परस्पर संश्लेष (एकक्षेत्रावगाही) होने पर ही आस्रव की प्रसिद्धि होती है इसलिए जीव और अजीव के समीप आस्रव को ग्रहण किया है। आस्रपवूर्पक होने से बंध को आस्रव के बाद ग्रहण किया है। क्योंकि बंध आस्रवपूर्वक होता है, अतः आस्रव के बंध को स्थान दिया है।।२१-२४।।

संवृत्त के बंध नहीं होता है, बंध की प्रत्यनीकता का ज्ञान कराने के लिए संवर वचन है। क्योंकि संवृत-सुरक्षित व्यक्ति के बंध नहीं होता है अतः बंधोह प्रत्यनीक (विपरीतता) का ज्ञान करानेद के लिए बंध के समीप संवर वचन लिखा है। संवर होने पर निर्जरा होती है, इसलिए संवर के समीप निर्जरा का कथन है। निर्जरा संवरपूर्वक ही होती है इसलिए संवर के निकट निर्जरा को स्थान दियाहै। अंत में, मोक्ष प्राप्य होने से मोक्ष का स्थान अंत में है। सर्व कर्मों के निर्जरणोह्व पर अन्त में मोक्ष होता है, इसलिए अन्त में मोक्ष को स्थान दिया है।।२५-२७।।

प्रश्न—इन सात तत्त्वों में पुण्य-पाप को भी ग्रहण करना चाहिए।

उत्तर—ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि आस्रव और बंध में ही पुण्य-पाप का अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका—अन्य ग्रंथों में कथित पुण्य-पाप को भी तत्त्वों में ग्रहण करना चाहिए।

समाधान—ऐसा नहीं है, पुण्य-पाप का आस्रव और बंध में अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि आस्रव और बंध पुण्य-पापात्मक हैं।

द्रव्यसंग्रह में देखिए—

[1]जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।।२।।

—शंभुछंद—

जो जीता है सो जीव कहा, उपयोगमयी वह होता है।
मूर्ती विरहित कर्ता स्वदेह, परिमाण कहा औ भोक्ता है।।

१. द्रव्य संग्रह, गाथा २, गाथा १५ गाथा २८

संसारी है औ सिद्ध कहा, स्वाभाविक ऊर्ध्वगमनशाली।
इन नौ अधिकारों से वर्णित, है जीव द्रव्य गुणमणिमाली।।२।।

अर्थ—प्रत्येक प्राणी जीव है, उपयोगमयी है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेह परिमाण रहने वाला है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है। ये जीव के नव विशेष लक्षण हैं।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु।।१५।।

पुद्गल औ धर्म, अधर्म तथा, आकाश काल ये हैं अजीव।
इन पाँचों में पुद्गल मूर्तिक, रूपादि गुणों से युत सदीव।।
बाकी के चार अमूर्तिक हैं, स्पर्श वर्ण रस गंध रहित।
चैतन्य प्राण से शून्य अतः, ये द्रव्य अचेतन ही हैं नित।।१५।।

अर्थ—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है ऐसा जानो। इनमें से पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है क्योंकि वह रूप, रस, गंध और स्पर्श गुण वाला है, बाकी शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं।

आसव बंधणसंवर-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीव-विसेसा, तेवि समासेण पभणामो।।२८।।

हैं जीव अजीव इन्हीं दो के, सब भेद विशेष कहे जाते।
वे आस्रव बंध तथा संवर, निर्जरा मोक्ष हैं कहलाते।।
ये सात तत्त्व हो जाते हैं, इनमें जब मिलते पुण्य पाप।
तब नौ पदार्थ होते इनको, संक्षेप विधि से कहूँ आज।।२८।।

अर्थ—जीव और अजीव के विशेष भेद रूप आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष होते हैं। ये पुण्य और पाप से सहित भी हैं। इन सबको हम संक्षेप से कहते हैं।

भावार्थ—जीव और अजीव के ही विशेष भेद आस्रव आदि रूप हैं जो कि सात तत्त्व हैं। उनमें पुण्य-पाप मिलाने से नव पदार्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार से यहाँ मैंने विभिन्न ग्रंथों के आधार से नौ पदार्थों/तत्त्वों का विषय प्रस्तुत किया है। आप सभी इन तत्त्वों का अध्ययन-चिंतन-मनन करके क्रम परम्परा से मोक्षतत्त्व को प्राप्त करें, यही मंगल कामना है।

जैन आगम में द्वादशतप

(इनके क्रम में अन्तर)

तवायारो वारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं[१] वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीर-परिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

छह अभ्यंतर छह बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।
तनुपरित्याग-तनुक्लेश विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।३।।

अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा।
कायस्स वि परितावो विवत्तिसयणासणं छट्ठं।।३४६।।[२]

अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तपरिसंख्यान, कायक्लेश और विविक्त शयनासन ये छह बाह्य तप हैं।।३४६।।

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो।।३६०।।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग-ये अभ्यन्तर तप हैं।।३६०।।

इसी प्रकार १२ तप का यही क्रम धवला पु. १३ में पृ. ५४ से ८८ तक है।

आगे तत्त्वार्थ सूत्र में अन्तर हुआ है। पुनः आगे के सभी आचार्यों ने प्रायः यही तत्त्वार्थसूत्र का क्रम लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में यह क्रम है—

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः।।१९।।

प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।।२०।।

इन दोनों में केवल बाह्य तप में 'कायक्लेश' तप को तथा अभ्यंतर तप में 'ध्यान' तप को श्री गौतम स्वामी ने श्री कुंदकुंददेव ने व श्री धवलाकार ने पाँचवें नम्बर पर लिया है तथा श्री उमास्वामी आचार्य ने इन दोनों तपों को छठे नम्बर पर रखा है। हमारे लिए दोनों कथन मान्य हैं क्योंकि हमारे व आपके लिए सभी पूर्वाचार्य प्रमाण हैं। धवला टीका में षट्खण्डागम जैसे

१. मूलाचार पूर्वार्द्ध, पृ. २८३। २. मूलाचार पूर्वार्द्ध, पृ. २९२।

महान ग्रंथों में भी जहाँ दो आचार्यों के दो मत आ गये हैं, वहाँ कैसा समाधान है। देखिए-

षट्खण्डागम धवला पुस्तक १ में पृ. १९७ पर कषायों के क्षय के क्रम में दो आचार्यों के अलग-अलग मत आये, तो प्रश्न हुआ कि एक ही कथन सत्य होगा न कि दोनों ?.....

तब श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं—

''दोण्ह वयणाणं मज्झे कं वयणं सच्चमिदि चे? केवली सुदकेवली वा जाणादि ण अण्णो तहा णिण्णयाभावादो। वट्टमाण-कालाइरिएहि वज्जभीरुहि दोण्हं पि संगहो कायव्वो अण्णहा वज्जभीरुत्त-विणासादो त्ति।''

शंका—दोनों प्रकार के वचनों में से किसी वचन को सत्य माना जाये ?

समाधान—इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि, इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है इसलिये पापभीरु वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिये अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जायेगा।''[१]

शंका—बादर निगोद जीवों से प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं दी ?

समाधान—**'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो।'** यहाँ गौतमस्वामी से पूछना चाहिए।''[२]

आश्चर्य होता है कि धवला टीकाकार ने कह दिया कि इसका समाधान 'श्री गौतम स्वामी से पूछना चाहिए।' किन्तु आज श्री गौतम स्वामी द्वारा रचित प्रतिक्रमण पाठ में ही परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन देखा जा रहा है, यह उचित नहीं है।

मूलाचार में देवियों की आयु के बारे में अंतर है। यथा—

इसकी टीका में श्री वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य कहते हैं—

''.....द्वौ अपि उपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशात्, द्वयोर्मध्ये एकेन सत्येन भवितव्यं, नात्र संदेहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति संदेहाभावात्। छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति।''[३]

दोनों ही उपदेश ग्रहण करना चाहिये क्योंकि दोनों ही सूत्र के उपदेश हैं। यद्यपिइह निश्चित है कि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिये। इस विषय में संशयमिथ्यात्वभी नहीं है, क्योंकि 'जो अर्हंतदेव द्वारा प्रणीत है वही सत्य है' इस प्रकार से संशय का अभाव हैक्योंकि छद्मस्थों को यह विवेक करना शक्य नहीं है इसलिये मिथ्यात्व के भय से ही दोनों को ग्रहणकरना चाहिये।

इन सभी प्रमाणों से यह निश्चित हो जाता है कि हम और आप सभी साधु-साध्वी, विद्वान् तथा श्रावकगण किसी भी ग्रंथ में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन का साहस न करें, जहाँ ऐसे दो तरह के प्रकरण हों, वहाँ वैसा ही रखें व श्रद्धान करें। यदि अपना मन्तव्य भी देना है, तो टिप्पण में दे सकते हैं।

इन बारह तपों के विषय में 'द्वादशतप' नाम से पृथक् पुस्तक में विस्तार से पढ़ेंगे।

१. धवला पु.१, पृ. २२२, २२३। २. धवला पु. ७, पृ. ५४१। १. मूलाचार, पर्याप्त्यधिकार गा.७९, ८०।